

भारतीय संगीत में कुछ निवडक संगीत तज्ञोंका स्वरलिपी का योगदान

डॉ. वृषाली र. देशमुख

जे.डी.पाटील सांगुळदकर महाविद्यालय दर्यापूर,
जि. अमरावती

सारांश:-

अपने विचार एवं भाव प्रकट करने हेतु जिस प्रकार किसी भाषा की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार बंदिशों को स्थायित्व देने के लिये (रागबद्ध तालबद्ध गीतें धुन आदि) में स्वरलिपी का स्थान अत्यंत आवश्यक है। किसी भी गीत और उसके गायन का समय यह किस प्रकार गाये बजाए जाते थे। यह आने वाली पीढ़ी को समझाने की दृष्टिसे स्वरलिपी का एक महत्वपूर्ण स्थान है, एवं एक प्रभावी माध्यम है जो आने वाली कई पीढ़ियों में संगीत शिक्षा ज्ञात करने का एक महत्वपूर्ण वरदान है।

स्वरलिपी से सामुहिक शिक्षा का आदान-प्रदान हो सकता है। किसी गीत का विस्मरण हो गया हो तो उसे पुनः प्राप्त करने में स्वरलिपी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिये स्वरलिपी का महत्व पिढी दर पिढी बढ़ता गया। किसी कलाकार के गायन में स्वरोंके हर लगाव का स्वरलेखन करना संभव नहीं है, एवं दो स्वरों में आनेवाले अन्यस्वर मीड अंशस्वर आदि को स्वरलेखन पद्धति से स्पष्ट करना संभव नहीं लेकिन किसी भी बंदिश का मूल स्वरूप (साचा) स्वरलिपी से आत्मसात किया जा सकता है। इस कलाको योग्य अधिकारी व्यक्ति स्वरलेखन का योग्य मार्गदर्शन कर सकता है।

इस प्रकार स्वरलेखन पद्धति की इस प्रकार महत्वपूर्ण उपयोगिता के कारण ज्ञानी व्यक्तियों से उसका बाकायदा उद्गम हुआ एवं समय के साथ उसका विकास हुआ।

उद्देश:-

भारतीय शास्त्रीय संगीत के श्रद्धेय पं. विष्णू दिगम्बर पलुरकर एवं पं. विष्णू नारायण भातखंडे द्वारा बनायी गयी स्वरलिपियाँ आज भी उत्तर हिंदुस्तानी स्वरलिपी पद्धति में प्रचलित है। फिर भी इन महान संगीतज्ञों के साथ-साथ अन्य शास्त्रकारों के स्वरलिपी में कुछ साम्य-भेद दिखाई देते हैं, अतः इन महान संगीतोद्धारक एवं संगीत शास्त्रकारोंके कार्य की तुलना करना मेरा अधिकार नहीं। आज हम स्वरलिपी के आधारपर ही संगीत का अमूल्य ज्ञान ले पा रहे हैं। इन संगीत तज्ञ के स्वर लिपी में कुछ समानता एवं भिन्नताई दिखाई देती है पंडित विष्णू दिगंबर पलूसकर व पंडित भातखंडेजीकी स्वरलिपी सबको ज्ञात है पर ऐसे और भी संगीत तज्ञ हैं जिनका अपने संगीत में स्वरलिपी का योगदान है। इस संशोधन पत्रिका में यही कुछ संगीत तज्ञके स्वर लिपी का योगदान दिखाना चाहते हैं। यही मेरा उद्देश है।

प्रस्तावना:-

भारतीय संगीत में स्वर लिपी पद्धति अतिप्राचीन है

।संगीत के काल में इसमें विकास एवम् प्रगती हुई। सामगान यह उदात्त, अनुदात एवं स्वरित इन स्वरोपर आधारित था स्वर व्यक्त करने हेतु वेदकालमें आडी (-) और खडी (I) रेखाओं का उपयोग करते थे। इसके बाद जैसे - जैसे स्वरोंकी संख्या बढ़ती गई वैसे विभिन्न चिन्होंका उपयोग होता गया। वेदकाल में कोमल, त्रिस्वरोंके लिए कोई चिन्ह नहीं थे।

इस काल में गायको द्वारा किये गये स्वरलिपी के संकेत मिले। महर्षि पाणिनी के अष्टमाध्यायी में स्वर क्रिया का सविस्तर वर्णन किया है। इससे यही प्रतीत होता है कि पाणिनी काल में स्वरलिपिका प्रचार था।

१२ वीं शताब्दी में शारंगदेव लिखित संगीत रत्नाकर में स्वरलिपी युक्त अनेक गीतों का समावेश है। इसके अलावा महर्षि भरतमुनी पं. सोमनाथ इन संगीतज्ञों के ग्रंथों में भी स्वरलिपिका उपयोग किया गया है। तालाध्यायों में मात्राओं के विभिन्न चिन्ह, ताल, की सशब्द एवं निःशब्द क्रिया आदि संम्बन्धी स्पष्ट विवेचन किया गया है।

१७ वी शताब्दी के पूर्वार्ध में पं. सोमनाथ के राग-विबोध के पाचवे अध्याय में तत् वाद्यो के लिये तेईस चिन्होंका प्रयोग दर्शाया गया है। इसमें स्थिर, अवकाश एवं मृदू-मंद्रस्थान के चिन्होंका प्रयोग किया गया है। भैरव राग में इन चिन्हों का प्रयोग निम्नलिखित रूपसे किया है।

१३ वी शताब्दी से २० वी शताब्दी के प्रारंभ में खाँ साहब मौलाबख्श के पूर्वकाल में संगीत कला ऐसे लोगों के हाथों में गई थी की जो पं. भरत, शारंगदेव इन महान शारत्रकारों के ग्रंथ ज्ञात करने में अथवा ग्रंथ निर्माण करने में समर्थ नहीं थे।

इसी कारण इस काल में संगीत की प्रात्यक्षिक क्रिया स्पष्ट रूप से प्रचार में आ न सकी अपितु इन्ही लोगों के कारण स्वरलिपि का अपप्रचार हुआ। इन सब का परिणाम ऐसा हुआ के संगीत कला सिर्फ सीमित लोगों तक ही पहुँच पायी इसलिए स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग कुछ समय तक बंद पड गया। स्वरलिपि पद्धतिकों आगे बढ़ाने में खाँसाहब मौलाबख्श इनका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है।'

खाँ साहब मौलाबख्श :-

आधुनिक काल में बडौंदा के खाँ साहब मौलाबख्श इन्होंने सर्वप्रथम स्वरलिपि का निर्माण किया। पाश्चात्य स्वरलिपि से प्रभावित होकर अपने देश में भी सामुहिक संगीत शिक्षा के लिये अत्यंत प्रभावी एवं उपयुक्त स्वरलिपि की जरूरत है इस हेतु इन्होंने पाश्चात्य संगीत के कुछ चिन्ह एवं स्वयं निर्मित कुछ चिन्ह इनके संयोग से एक स्वतंत्र स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया। खाँ साहब के इस नये प्रयोग से शिक्षित वर्ग अति प्रभावित हुआ एवं संगीत शिक्षा के लिए स्वरलिपि -बद्ध पुस्तकों की आवश्यकता है ऐसा उन्होंने प्रतिपादन किया। खाँ साहब की यह स्वरलेखन पद्धति सभीकों उपयुक्त लगने लगी।

संगीतोद्धारक पं. विष्णू दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत कला में अभिरूचि रखने वाले सानान्य जनों के लिए संगीत संस्थाएँ खोलकर उनकी कला को निखारा और उनकी आशाओं को नई दिशा दि। भारतीय संगीत तथा अपनी संस्कृति की अमूल्य धरोहर सहेजकर रखने तथा उसमें संशोधन करके सामान्य जनों तक पहुंचाने के अथक परिश्रम पंडित विष्णू नारायण भातखंडे इन्होंने किया है। इन्होंने सुगम, सरल, और सुलभ स्वरलिपि का अविष्कार किया जिससे संगीत-शिक्षा बहुत आसान हो गई।

पं. विष्णू दिगम्बर पलुस्कर तथा पं. विष्णू नारायण भातखंडे इन दो संगीतज्ञों ने शास्त्रीय संगीत की परिभाषा में अमूल्य परिवर्तन किया। इन दो संगीतोद्धारक शास्त्रकारों के कारण ही आज हम संगीत की शिक्षा इतने सुलभ रूप से ले पा रहे हैं। पं.विष्णू दिगम्बर पलुस्कर ने अपने घर परिवार की परवा न करते हुए पूरी लगन के साथ संगीत के लक्ष को ही अपना घर-परिवार समझा और उसी के साथ बंधे रहे।

आज उसी के फलस्वरूप हम सभी उनकी स्वरलिपि में अपनी संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उसी प्रकार भातखंडे जी ने भारतीय संगीत की परंपरा में प्राचीन ग्रंथ एव सामवेद में समाविष्ट श्लोक आदी के आधार पर स्वर लिपी पद्धतीकी निर्मिती की पंडित जी ने प्राचीन परंपरा के साथ साथ आने वाली आधुनिक पिढी को ध्यान में रखते हुए स्वर लिपी की रचना की ,क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिये एक नई स्वरलिपि की रचना की, जिसका प्रचार उत्तरी हिंदुस्तानी संगीत में बहुत अधिक है। जिस समय भारत में रेडीयो नहीं था, उस समय भातखंडे जी ने संगीत के प्रचार हेतु संगीत सम्मेलन की कल्पना की। इन दोनों शास्त्रकारों के कारण शास्त्रीय संगीत का प्रचार प्रसार हुआ। सामान्य लोगोंकी संगीत के प्रति रूचि बढ़ती गई, और स्वरलिपि के कारण उसे ग्रहण करना भी आसान हो गया। इसी के कारण कई संगीत सम्मेलन होने लगे। उसे सुनने वालों की संख्या में वृद्धि हुई।

पं.कृष्णराव शंकरराव पंडित:-

संगीत कला के प्रकांड पंडित श्रीकृष्णराव ग्वालियर के निवासी है।आपने अपना कार्य-क्षेत्र आरम्भ से ही ग्वालियर रखा है।१९१३ में महाराज सातास ने आपको शिक्षक के रूप में अपने वहाँ रखा, परन्तु एक वर्ष बाद ही आपने यह कार्य छोड़ दिया। इसके उपरांत महाराज ग्वालियर ने आपको पाँच वर्ष तक अपने दरबार में रखा। इस बीच आपने आधुनिक ग्वालियर नरेश (तत्कालीन युवराज) और उनकी बहन भी कमला राजा को संगीत-शिक्षा दी। परिस्थितियों से विवस होकर आपने दरबार छोड़ दिया और देशाटन के लिए निकल पड़े। तभी से आपके मनमें एक संगीत- विषयक अच्छी संस्था स्थापित करने की इच्छा उठी। फलतः सन् १९१४ ई में आने 'गांधर्व महाविद्यालय' नाम से ग्वालियर में एक संस्था स्थापित की। सन् १९१७ ई. में उक्त संस्था का नाम अपने पिता की स्मृति में शंकर गांधर्व विद्यालय रखा। यह संस्था तभी से संगीत-शिक्षण का कार्य कर रही है और प्रतिवर्ष अच्छे अच्छे कलाकार इस संस्था से निकलते रहे हैं। यह विद्यालय

ग्वालियर में सबसे प्राचीन है। सन् १९२६ ३१ ग्वालियर आलिया कौन्सिल द्वारा आपको तथा म. उमराव खाँ को दरबारी गायक नियुक्त किया गया। सन् १९४७ ई में ग्वालियर महाराज (श्रीमन्त जयाजीराव शिविया) ने आपको स्थानीय माधव संगीत महाविद्यालय में सुपरवाइजर अलाउन्स देकर नियुक्त किया था। सन् १९४५ ई. में ग्वालियर में आप 'संगीत-रत्नालंकार' की उपाधि से सम्मानित हो चुके हैं। सन् १९५९ ई. में आपको राष्ट्रपति पुरस्कार तथा सनद प्रदान किए गए। सन् १९६२ ई में खैरागढ़ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। १९७३ में भारत- सरकार ने आपको 'पद्म भूषण' के अलंकार से विभूषित किया। पं. कृष्णराव पंडितजी ने अपने पिताश्री पं. शंकर पंडित की सांगीतीक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उनकी स्वररचित बंदिशों को अपने स्वरचित स्वरलिपिसे स्वरलिपिबद्ध किया तथा अनेक नयी बंदिशों को स्वरबद्ध किया।

पं.ओंकारनाथ ठाकूर :-

पं. ओंकारनाथ ठाकूर जी ने ग्वालीयर घराने के प्रख्यात विष्णू दिगम्बर पलुस्कर से उनकी गायकी आत्मसात करने के पश्चात् अपने गायन शैली को प्रस्तुत किया और उसे भरपूर सफलता एवं प्रतिसाद प्राप्त हुआ।

पं. ओंकारनाथ ठाकूर एक प्रख्यात गायक होने के साथ एक सफल उच्चश्रेणीके शिक्षक थे। लाहौर में पंडितजीने १९१६ से १९१९ तक के सफलतापूर्वक कार्य करते हुए, असंख्य विद्यार्थियों को संगीत विद्या का दान किया। पं. ओंकारनाथ ठाकूर ने अपनी स्वतंत्र स्वरलिपि की रचना करके श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में अतुलनीय ख्याती प्राप्त की थी।

स्वरलिपिका आविष्कार करनेवाले संगीतज्ञों की स्वरलेखन पद्धतियाँ

सन् १८३३ से १८९६ मे निर्मित उस्ताद मौलाबख्श की स्वरलेखन पद्धति

१) शुद्ध स्वर - कोई चिन्ह नहीं

२) मंद्र स्वर - _

३) तार स्वर - •_•

४) मध्य स्वर - चिन्ह नहीं

५) कोमल स्वर - √

६) त्रि मध्यम म.

ताल चिन्ह

१) सम - सा

२) काल - >

निष्कर्ष :-

संगीतशास्त्र में मुद्रणकला का आविष्कार हुआ इसे पूर्णरूप से आविष्कृत करनेमें हमारे महान शास्त्रकार उस्ताद मौलाबख्श, पं.वि.दी. पलुस्कर, प.वि. ना. भातखंडे ओंकारनाथ ठाकूर, पं. कृष्णराव पंडीत आदी संगीतज्ञों का योगदान है।

इस प्रकार भारतीय संगीत की विशाल परम्परा में इन महान संगीतज्ञों ने स्वरलिपि का आविष्कार करके संगीत का भविष्य उज्ज्वल कर दिया। भारतीय संगीत में स्वरलिपि के आविष्कार ने संगीत का भविष्य प्रकाशमान किया है।

इन महान संगीतज्ञोंकी स्वरलेखन पद्धति त्रि-कोमल स्वर तार-मंद्र स्वरोंके चिन्ह में शास्त्रकारों के मतानुसार बदलाव होते गये।

अतः इन श्रेष्ठ संगीतज्ञों ने स्वरलिपिकी निर्मिति करके कुछ बंदिशें संग्रहीत करके जनसामान्य संगीत प्रेमीओतक पोहोचाने की एक सुविधा निर्माण की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- 1) हमारे संगीत रत्न लेखक- लक्ष्मीनारायण गर्ग
- 2) संगीतातील घराणी आणि चरित्रे लेखक -डॉ. नारायण मंगळूरकर
- 3) संगीतांजली लेखक -पंडित ओंकारनाथ ठाकूर
- 4) राग विज्ञान लेखक-पं.वि.दी. पलुस्कर
- 5) भारतीय संगीत के महान संगीतकार शंकर पंडित लेखक -तुषार पंडित